श्रीमद् राजचन्द्रजी की महाविदेही दशा

उपास्यपदे उपादेयता

एवं

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी का परिचय

योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानंदघनजी
(भद्रमुनि)

जय जय तीर्थक्षेत्र हम्पी : श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम

– जहाँ अलख जगाई महाविदेही श्रीमद्जी के पदानुसारी
यो.यु. श्री सहजानंदघनजी एवं आत्मज्ञा माताजी धनदेवीजी ने !

श्री वासुपूज्य स्वामी जिनमन्दिर

एवं

श्रीमद् राजचन्द्र ध्यान मन्दिर

एम.जे. नगर, होस्पेट

जिसमें महाविदेही **श्रीमद् राजचन्द्रजी** एवं

यो.यु. **श्री सहजानंदघनजी** के चित्रपट स्थापित हैं।

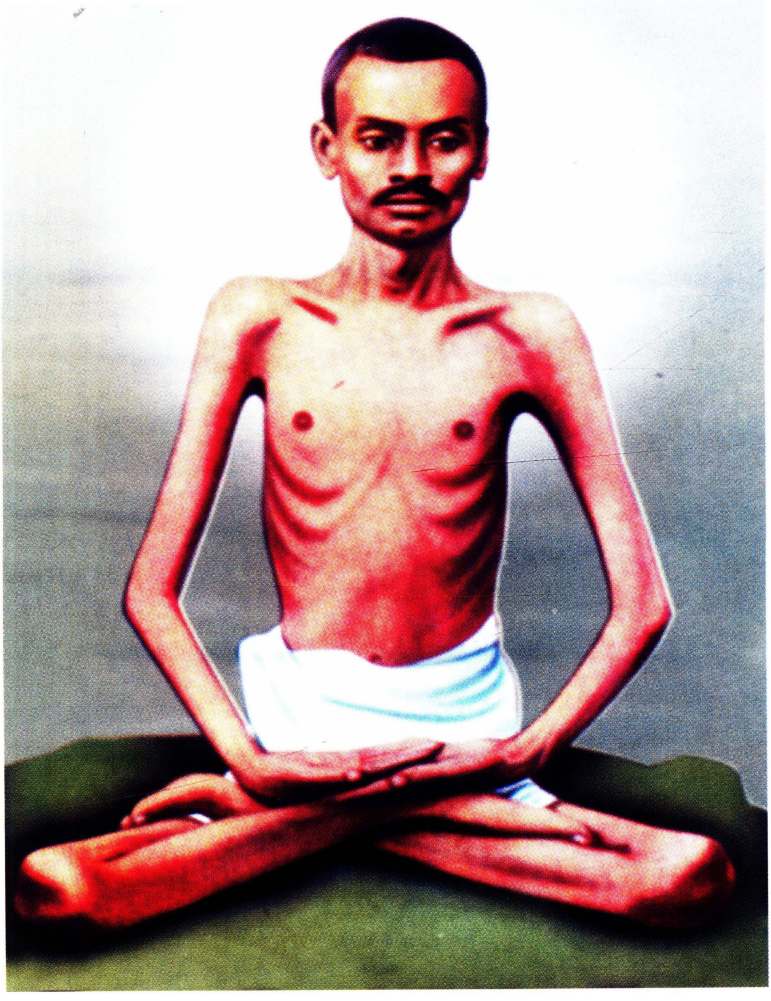

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचन्द्र

जन्म : वि.सं. १९२४ कार्तिक शुक्ल १५, ववाणिया (गुजरात)

महाप्रयाण : वि.सं. १९५७ (गुज) चैत्र कृष्णा ५, राजकोट (गुजरात)

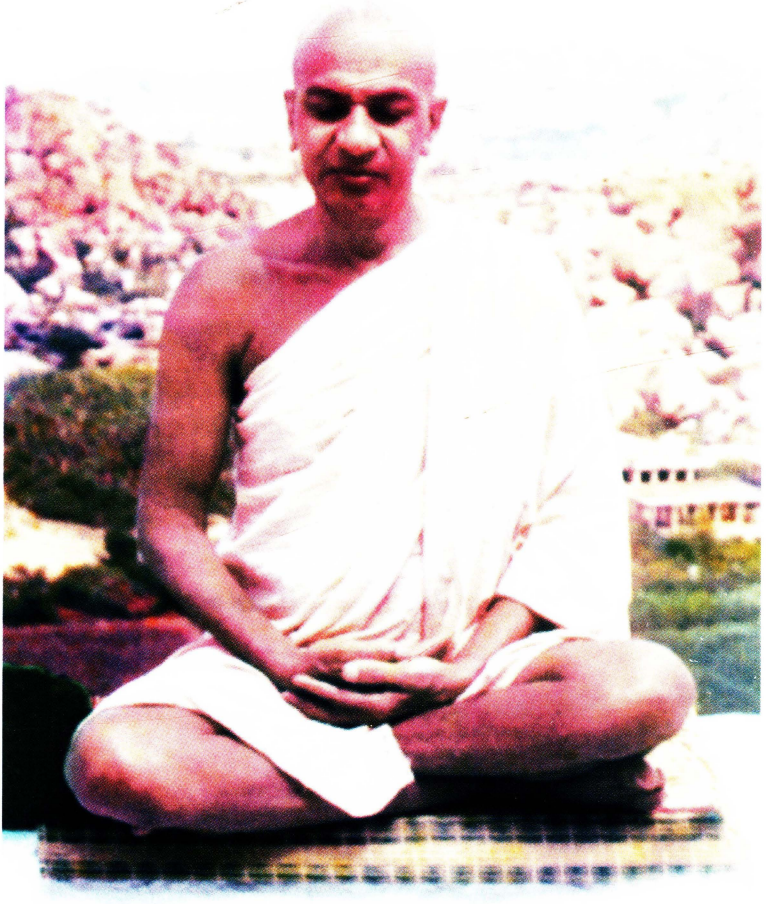

योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानन्दघनजी म.सा.

जन्म : संवत् १९७० भादरवा शुक्ल १०, डुमरा (कच्छ)

दीक्षा : सं. १९९१ लायजा (कच्छ)

देवों द्वारा युगप्रधान पद प्रदत्त : संवत् २०१७ ज्येष्ठ शुक्ल १५, बोरडी

महाप्रयाण : कार्तिक शुक्ल २, संवत् २०२७, हम्पी

आत्मज्ञा माताजी श्री धनदेवीजी

महाप्रयाण : सं. २०४९ चैत्र शु. १, हम्पी

युगप्रधान दादा गुरुदेव श्री जिनदत्तसूरिजी

स्व. श्री गिरधारीलालजी पालरेचा

मुख्य लाभार्थी

स्व. श्रीमती सुकीदेवी पालरेचा

धर्मपत्नी : स्व. श्री गिरधारीलालजी पालरेचा

श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी सौरभ कृति का हिन्दी संस्करण

श्रीमद् राजचन्द्रजी की महाविदेही दशा

उपास्यपदे उपादेयता

एवं

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी का परिचय

सफल थयुं भव म्हारूं हो, कृपालुदेव !
पामी शरण तमारूं हो, कृपालुदेव ॥

योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानंदघनजी

अनुवादक-सम्पादक

प्रा. प्रतापकुमार ज.टोलिया, बेंगलोर

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :
जिन भारती
वर्धमान भारती इन्टरनेशनल फाउण्डेशन
प्रभात कॉम्पलेक्स, के.जी. रोड,
बैंगलोर-560 009.

मंगल अवसर अग्रिम कृति
प.पू. सद्गुरुदेव श्री सहजानंदघनजी की जन्म शताब्दी

हिन्दी संस्करण :
प्रतियाँ : 500
वि.सं. 2069
सन्: 2013

प्रतीक देय मूल्य : 11 रुपए

मुद्रक :
जैन प्रिन्टर्स
चेन्नई
25211861, 98400 65224

श्रीमद् राजचन्द्रजी की महाविदेही दशा (उपास्यपदे उपादेयता)

'अनन्य आत्मशरणप्रदा सद्गुरुराज विदेह।
पराभक्तिवश चरण में, धरूं आत्मबलि एह।।'

(यो.यु. श्री सहजानन्दघनजी)

प्राक्कथन

'तनु रहते जिनकी दशा, वर्त्ते देहातीत।
उन ज्ञानी के चरण में, हो वंदन अगणित-अनगिनत।।'

(सप्तभाषी आत्मसिद्धि-142)

युगदृष्टा ज्ञानावतार परमकृपालुदेव श्रीमद् राजचन्द्रजी की इस कलिकाल के कल्पतरुवत् जो परमज्ञानमय देहातीत महाविदेही दशा रही है उसे हम सब, उनके उपासक भी, क्या जानें ?

हम तो ठहरे अज्ञानी व जड़बुद्धि ! क्रिया जड़ और शुष्कज्ञानी। उस अद्भुत, अपूर्व, अनुभव-दशा को तो वैसे ही स्वानुभवदशा-युक्त आत्मानुभवी सत्पुरुष ही जान सकते हैं।

ऐसे स्वानुभूतिपूर्ण दृष्टापुरुष थे श्रीमद्जीवत् ही देहातीत आत्मदशा

पर पहुँचे हुए सद्गुरुदेव यो.यु.श्री सहजानन्दघनजी।

अपनी युगप्रधानपद प्राप्ति तक की महामहिमा को भी गोपित कर, परम योगीन्द्र की सर्वोच्च योगदशा को विस्मृत कर, एक सरल बालवत् विनम्रता धारण कर, 'अनन्य आत्मशरणप्रदा सद्गुरु राज-विदेह' का पराभक्तिवश शरण ग्रहण कर अपनी आत्मबलि उनके श्रीचरणों में धर दी, समर्पित कर दी, लघुता धारण कर ली यह सारी उनकी 'अकथ-कहानी' है।

श्रीमद्जीवत् परिशुद्ध-परिपूर्ण आत्मध्यानावस्था की देहातीत दशा के शिखर पर पहुँचकर उन्होंने श्रीमद्जी की वर्तमान-प्रवर्तमान उच्च पदासीन महाविदेही-महाविदेहस्थ दशा का जो दर्शन किया, वह अद्भुत है, अन्यों से अगम्य भिन्न और मौलिक रहा है।

उस अपूर्व दर्शन का ही प्रतिदर्शन है इस लघुकृति में।

जौहरी की गति और परख जौहरी ही जानता है। उन्हें कवि-मनीषी क्रान्तदृष्टा ही पहचान पाता है। वैसे अद्भुत क्रान्तदृष्टा श्रीमद्जी को सहजानंदघनजी जैसे स्वानुभूत क्रांतदृष्टा ही गहराई में और सही दृष्टि-परिप्रेक्ष्य में नितांत अनूठे रूप में पहचान पाए हैं। बड़ी दुर्लभ होती है विरल सत्पुरुषों की सही पहचान। अंग्रेज कवि-मनीषी बॅन जॉन्सन ने इस संदर्भ में बिलकुल ठीक कहा है- "To judge of poets is only the faculty of poets, and not of all, but the best !"

(कवियों का मूल्यांकन करना यह कवियों के, केवल उच्च कोटि

के कवियों के ही बस की, अधिकार क्षेत्र की बात है।)

अत: ऐसे उपयुक्त अधिकारी, जौहरी क्रान्तदृष्टा सद्गुरुदेव श्री सहजानन्दघनजी लिखित श्रीमद्जी की यह महिमा कथा, उनकी महाविदेही दशा और वर्तमान में महाविदेह-क्षेत्र में ही संस्थिति, श्रीमद्जी को यथोचित स्वरूप में समझने में बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है। श्रीमद्जी की यह अनुपम अद्वितीय दशा, इस वर्तमानकाल में उपास्यपद पर उनकी उपोदयता स्पष्ट करती है।

उनकी इस महत्वपूर्ण कृति का यह हिन्दी अनुवाद अनेक बिन गुजराती संशोधकों, साधकों, जिज्ञासुजनों और भक्तों की दीर्घकालीन माँग के प्रतिभाव में परमगुरु प्रेरणा, कृपा और आज्ञा से प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा और श्रद्धा है, यह प्रभु-कृति परमकृपालुदेव को यथावत् स्वरूप में प्रकाशित करने में निमित्त रूप बनेगी और जिनवाणी को विश्वव्यापी बनाने में महान योगदान देगी।

ऐसी महिमामयी इस कृति का लेखन अनुरोध विनय गुरुदेव के प्रति व्यक्त करनेवाले थे अहमदाबाद के मुमुक्षुवर्य, साक्षर एवं परमकृपालुदेव के संनिष्ठ भक्त श्री लालभाई सोमचंद शाह। श्री लालभाई के पिताजी स्वयं श्रीमद्जी की प्रत्यक्ष सेवा कर पाने में सद्भागी रहे थे। फिर अहमदाबाद के ही अन्य श्रीमद् भक्त, एम. वाडीलाल कम्पनी के श्री जयन्तीलाल सकराभाई ने इस उपकारक कृति का प्रकाशन करने का लाभ लिया था। श्री सहजानंदघनजी के प्रति इस श्रीमद् भक्त का भक्तिभाव दृष्टव्य है, जो कि उनके स्वयं के

शब्दों में 'मूल प्रकाशक का निवेदन' शीर्षक अंतर्गत साथ में संबद्ध है।

जाना जाता है कि इस कृति का लेखन, गुरुदेव ने अपने देहविलय के 3-4 वर्ष पूर्व श्रीमद् राजचन्द्र जन्म शताब्दी के अवसर पर किया था और प्रकाशन किया था (प्रथमावृत्ति का) संवत् 2024 (सन् 1967) में अहमदाबाद के श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञान प्रचारक ट्रस्ट ने 'श्रीमद् राजचन्द्र जन्म शताब्दी सौरभ' के रूप में। संभवत: यह पुस्तक गुरुदेव की अन्तिम पुस्तक-प्रति लगती है और इसलिए इस कृति का महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

पुस्तक की द्वितीय आवृत्ति वि.सं. 2049 में श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी की ओर से प्रकाशित हुई है। इसके हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन का सौभाग्य श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी के सौजन्य से हमारी संस्था को प्राप्त हो रहा है। विशेषकर स्वयं गुरुदेव सहजानंदघनजी की आगामी जन्मशती के अवसर पर। अब की जब इस जन्मशती के लिए एक वर्ष से भी कम समय ही शेष रहा है, तब गुरुदेव के और गुरुदेव संबंधित सारे बाकी अप्रकाशित साहित्य का उनके अक्षर देह और स्वरदेह (प्रवचन टेइपों) को शीघ्र ही प्रकाशित करना आवश्यक है। इस आयोजन की तैयारी में सहभागी बनने के लिए सभी गुरुबंधुओं व गुरु भगिनियों को विनम्र अनुरोध है। इसी प्रकार गुरुदेव की जन्म भूमि कच्छ-डुमरा में उनका स्मारक बनवाने की प्रक्रिया में अति शीघ्रता लाने की आवश्यकता है कि जिसकी

प्रेरणा इस अल्पात्मा पंक्तिलेखक ने बरसों पूर्व बोरडी में अपनी पुष्प-पंखुड़ी-सी दानराशि से की थी।

आज तो इस अनुवादकृति के प्रकाशन में निमित्त बने हुए गुरुबंधु श्री पेराजमलजी एवं श्री बाबुलालजी सहित सभी को अनेकानेक धन्यवाद, विशेषकर अर्थ सहयोगियों को जिनकी सूची अलग दी गई है।

परमगुरुओं की आज्ञा सर्वत्र अनुपालित हो और उनका योगबल विश्वकल्याणकर बनो।

सोमवार, शरदपूर्णिमा
दि. 29.10.2012
पारुल, 1580 कुमारस्वामी ले आउट,
बेंगलोर-560 078.

प्रा. प्रतापकुमार ज.टोलिया
अनुवादक-सम्पादक

ई-मेल : pratapkumartoliya@gmail.com
दूरभाष : 080-26667882
मो. 09611231580

मूल प्रकाशक का निवेदन

मेरे परम सद्भाग्य से और श्रीमद् राजचन्द्र परम कृपालुदेव की ओर की भक्ति-श्रद्धा से मुझे प.पू. श्री सहजानंदघनस्वामीजी (भद्रमुनिजी) का सत्समागम प्राप्त हुआ। आपश्री की नि:शंकता, निर्भयता और वन प्रांतर एवं गुफाओं में साधना करने की शक्ति से मैं उनके प्रति आकर्षित हुआ और समागम करने लगा। मुख्यत: अहमदाबाद, अगास, वड़वा, इडर और बोरड़ी में मुझे समागम का लाभ मिला। आत्मभान सह वीतरागता समझाने की उनकी शक्ति अद्भुत है। प्राय: संवत् 2017 में श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी की स्थापना हुई ऐसा ज्ञात हुआ और प.पू. श्री सहजानंदघनस्वामीजी वहीं गुफा में स्थिरता करेंगे यह भी ज्ञात हुआ और तत्पश्चात् मुझे हम्पी जाने का अवसर मिला। स्थान और चहुँ ओर की हरियाली नयनरम्य है, और उस पर भी ऐसे सत्संग का योग। इसलिए वर्ष में एकाध बार तो वह लाभ प्राप्त करने हेतु मैं हम्पी जाता हूँ। अब जब संवत् 2024 की कार्तिक पूर्णिमा को परमकृपालु श्रीमद् राजचन्द्रदेव की जन्मशताब्दी आ रही है, ठीक उसी अवसर पर इस पुस्तिका को प्रकाशित करने का सद्भाग्य प्राप्त होने से मुझे अत्यंत आनन्द हुआ है। इस पुस्तिका में 'उपास्यपद पर उपादेयता' और श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम हम्पी का संक्षिप्त वृत्तांत समाविष्ट हुआ है, जो दोनों प.पू. श्री

सहजानंदघनस्वामीजी द्वारा लिखित हैं। ये मुझे अनायास ही प्राप्त हुए और उन्हें मुद्रित कराकर प्रसिद्ध करने की मेरी भावना का मैं संवरण नहीं कर सका हूँ। इस कारण से यह पुस्तिका आज आप के करकमल में आ रही है। उसका सदुपयोग करें ऐसी आशा सह परमकृपालुदेव को और श्री सहजानंदघनस्वामीजी को भक्ति-भाव पूर्वक नमस्कार करके यह निवेदन समाप्त करता हूँ।

श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञान प्रचारक ट्रस्ट
दिल्ही दरवाजा बाहर
अहमदाबाद

जयन्तीलाल सकराभाई
मे. एम. वाडीलाल की कम्पनी
अहमदाबाद

(गुजराती से अनूदित)

अनुक्रम

1. सम्पादकीय : श्रीमद् राजचन्द्रजी की महाविदेही दशा (उपास्यपदे उपादेयता) प्राक्कथन

2. मूल प्रकाशक का निवेदन

3. प्रास्ताविक एवं अर्थ सहयोगियों की नामावली

4. श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी : स्थापना एवं संक्षिप्त परिचय योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानंदघनजी

5. साधकीय नियमावली : योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानंदघनजी

6. श्रीमद् राजचन्द्र : उपास्यपदे (उपास्यपद पर) उपादेयता योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानंदघनजी

7. कलश-काव्य : सफल थयुं भव म्हारूं हो : योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानंदघनजी

॥ ॐ नमः ॥

सहजात्मस्वरूप परम गुरु

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम

हम्पी (दक्षिण भारत)

प्रास्ताविक

'उपास्यपदे उपादेयता' एवं 'श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी संक्षिप्त अहेवाल' पुस्तक की द्वितीय आवृत्ति आपके करकमल में अर्पित करने में हम अत्यंत हर्ष का अनुभव करते हैं। इस पुस्तक में 'श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम हम्पी' की स्थापना के विषय में दर्शाया गया है एवं श्रीमद् राजचन्द्रजी के विषय में, उनकी आत्मचर्या के विषय में, शुद्ध समकित के विषय में श्रीमद्जी के ही शब्दों का उपयोग करके दर्शित किया गया है, जिसे पढ़ने से श्रीमद्जी के युगप्रधान होने के संबंध में और अद्वितीय आत्मज्ञान के संबंध में जानकर प्रत्येक जीव वंदन करने हेतु प्रेरित होता है। अनेक लोग कृपालु-भक्त बने।

'श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम हम्पी' की स्थापना संवत् 2017 सन् 1961 में प.पू. युगप्रधान श्री सहजानंदघनजी ने की। वे भी आत्मज्ञानी थे यह बात भी उनके व्याख्यानों के द्वारा सर्व भक्तों को प्रतीत हुई।

उस समय आश्रम का विकास-विस्तार होता गया और शासन प्रभावना भी बहुत हुई। संवत् 2027 कार्तिक शुक्ला द्वितीया दि. 02.11.1970 के दिन उनका देहविलय हुआ। निर्वाण प्राप्त किया और वे महाविदेहगामी बने। भक्तों को उनका विरह सहन करना पड़ा, परन्तु प.पू. आत्मज्ञानी जगतमाताजी श्री धनदेवी की आश्रम में उपस्थिति होने से विरहाग्नि में भक्तगण को राहत मिली थी। प.पू. माताजी की पावन निश्रा में आश्रम का बहुत विकास हुआ और भक्ति का प्रवाह निरंतर वर्धमान होता रहा। भक्ति की शक्ति के द्वारा और उसका महत्व समझाते हुए वे कृपालुदेव के भक्तों को भक्ति में तन्मय बनाकर अध्यात्म की पगडंडियाँ चढ़ाते हुए आत्मा की पहचान की ओर ले गए। प.पू. माताजी ने भी संवत् 2049 चैत्र शुक्ला 1 के दिन भरत क्षेत्र से विदा लेकर देहत्याग कर महाविदेह क्षेत्र प्रति प्रस्थान किया।

दो-दो ज्ञानियों ने इस क्षेत्र में विचरण किया इसलिए यह भूमि तीर्थभूमि बनी है, इसमें कोई भी संदेह नहीं है। इस भूमि का स्पर्श करते ही भव्यजीवों को परम शान्ति का अनुभव होता है। आश्रम के सारे ही कार्यक्रम ज्ञानियों द्वारा दर्शित मार्ग पर पूर्ववत् नियमित चलते हैं। अनेक भक्त नियमित भक्ति का लाभ प्राप्त करते हैं। कृपालुदेव के भक्त एवं अन्य भविजीव इस तीर्थभूमि की स्पर्शना बार-बार करते रहते हैं।

भाग्यवंत अर्थ सहयोगियों की नामावली

1. शा गिरधारीलालजी शेराजी पालरेचा चेरिटेबल ट्रस्ट, होस्पेट ह: श्री बाबुलालजी-महेन्द्रकुमारजी कान्तिलालजी पालरेचा - 27,001/-
2. श्री कपूरचंदजी अमीचंदजी, बेल्लारी - 1,101/-
3. श्री मुलतानमलजी, गुंटूर - 1,101/-
4. श्री अनिलजी चौरड़िया, पूना - 1,101/-
5. श्री मूलचंदजी सोनमलजी, गदग - 1,101/-
6. श्री पेराजमलजी गोमराजजी, चेन्नई - 1,101/-
7. श्रीमती पानीदेवी पोकरचंदजी, बेल्लारी - 1,101/-
8. प्रा. प्रतापकुमार टोलिया, बेंगलोर - 501/-
9. श्री जेठमलजी पालरेचा, होस्पेट - 501/-
10. श्री रतनचंदजी हरकचंदजी, होस्पेट - 501/-
11. श्री मोहनलालजी अमरचंदजी छाजेड़ (मामाजी), दहाणुं - 501/-

॥ ॐ नमः ॥

सहजात्म स्वरूप परम गुरु

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम

हम्पी (दक्षिण भारत)

यो. युगप्रधान श्री सहजानंदघनजी

जैनों, शैवों और वैष्णवों का प्राचीन तीर्थधाम यह हम्पी मैसूर राज्य (कर्णाटक) के बेल्लारी जिले में 'गुंटकल हुबली' रेलवे लाइन के होस्पेट स्टेशन से 7.25 मिल (12 कि.मी.) दूर पूर्वोत्तर कोने में बसा हुआ है। आवागमन हेतु एस.टी. बस सर्विस की पर्याप्त सुविधा है। हरियाली भरा प्रदेश और ऐतिहासिक पुरातत्त्व सामग्री विश्व समस्त के यात्रियों को यहाँ खींचकर ले आते हैं।

आज से प्राय: 11,86,493 वर्ष पूर्व, जब बीसवें तीर्थंकर भगवान श्री मुनिसुव्रतस्वामी इस भरत क्षेत्र में ज्ञानगंगा बहाकर भव्य कमलों को विकसित करते थे, तब उनके अनुयायी वर्ग में विद्याधर भी अच्छी संख्या में सम्मिलित थे। उस विद्याधर वर्ग के विद्यासिद्ध राजाओं में से रामायण प्रसिद्ध बाली सुग्रीव जहाँ राज्य करते थे और उनकी राजधानी जो किष्किंधा नगरी (वानर द्वीप) कहलाती थी, वही यह विद्याधर भूमि।

सन् 1336 में विजयनगर का निर्माण कार्य प्रारंभ हुआ। उसके पूर्व यहाँ हेमकूट से सटकर उत्तरीय ढलान में हम्पी ग्राम और दक्षिण में कृष्णापुरम ग्राम थे। नदी के पार भोट जैन तीर्थ था और इस पार हेमकूट तथा चक्रकूट नामक दो जैन तीर्थ भी थे। ये तीनों तीर्थ दिगम्बर सम्प्रदाय के अधिकार में थे।

विजयनगर की वैभव सम्पन्नता की गुणगाथा सुनाने वाले सैंकड़ों जिनालय, सैंकड़ों शिवालय, अनेक विष्णु गणपति मन्दिर, हजारों गुफाएँ, सैंकड़ों महालय, कोट किलों के ध्वंसावशेष और यहाँ की पहाड़ी पर्वतशैलमालाएँ समतल भूमि पर विस्तार से बिखरी हुई प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। नगर के उत्तरी तट पर बारह मासा प्रवाहवाली तुंगभद्रा नदी अस्खलित प्रवाह से प्रवहमान रहती है।

जैन तीर्थ हेमकूट और जैन तीर्थ चक्रकूट पर कतिपय जिनालयों के खंडहरों की बिखरी हुई विस्तृत सामग्री आँखों से देखी जा सकती है। यहाँ के तीनों ही जैन तीर्थों का उल्लेख जिसमें है ऐसे श्वेताम्बर-दिगम्बर उभय सम्प्रदाय को मान्य अति प्राचीन तीर्थवंदना स्तोत्र 'सद्भक्त्या' में कहा है कि-

'कर्णाटे हेमकूटे विकट-तरकटे चक्रकूटे च भोटे।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रतिदिवसमहं तानि चैत्यानि वन्दे॥'

चक्रकूट के नीचे उत्तराभिमुख बहते जल-प्रवाह को अजैन लोग चक्रतीर्थ कहते हैं और उसमें स्नान करके अपने भवोभव के पाप ताप शमित करने का संतोष प्राप्त करते हैं।

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम – स्थापना

हेमकूट की पूर्व दिशा में सड़क से सटकर तीस एकड़ के विस्तारवाला सामान्य ऊँचाई प्राप्त, एक शिखर है जिसे रत्नकूट कहते हैं। उसके पूर्वी छोर पर मातंग पर्वत स्थित है। रत्नकूट पर लम्बी बड़ी गुफाएँ और कुछ छोटी गुफाएँ, चार प्राकृतिक जल कुण्ड, छोटे खेत और बाकी का पुढवीशिलामय विस्तार है, जिस पर विक्रम संवत् 2017 की आषाढ़ शुक्ला एकादशी दि. 24.07.1961 के दिन 'श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम' की स्थापना अत्यंत ही उल्लासपूर्वक योगानुयोग से हुई।

इस आश्रम के प्रादुर्भाव में तथा प्रकार के कर्मोदय से यह देहधारी मुख्य निमित्त बना था। विक्रम संवत् 1991 की वैशाख शुक्ला 6 के दिन महामहोत्सव से विशाल जनसंख्या की उपस्थिति में मुनि दीक्षा अंगीकार करके इस देहधारी को 'मूलजी भाई' मिटाकर 'भद्रमुनि' के नाम से प्रसिद्ध किया गया। गुरुकुल वास में बसते हुए विनयोपासना पूर्वक साधु समाचारी, प्रचलित प्रकरण-ग्रंथ, संस्कृत-प्राकृतादि व्याकरण, कोष, छंद, अलंकार, काव्य आदि ग्रंथ, जैन अजैन न्यायग्रंथ और दशवैकालिक आदि सूत्र कंठस्थ करके यह देहधारी गुरुगण में प्रीतिपात्र बना। सेवा के आदान प्रदान पूर्वक दीक्षा पर्याय के बारहवें वर्ष में धर्मऋण का निरसन कर उऋण होकर आत्मा के आदेश का पालन करने हेतु गुफावासी बना।

अनेक देश-प्रदेश में अनेक गुफाओं और एकांत वनोपवनों में विचरण करते हुए अनेक धर्मों के त्यागी तपस्वी तथा सद्गृहस्थों का परिचय हुआ। उनमें से विशेष परिचय में आए हुए कुछ भाविकों ने भक्ति भावना वश प्राप्त आध्यात्मिक अनुभव का लाभ दूसरों को मिले उस हेतु आश्रम पद्धति को उचित मानकर अपने खर्च से आश्रम बांध देने की इच्छा प्रदर्शित की, परन्तु भीतर के आदेश के बिना किसी का भी स्वीकार नहीं किया। विशेष में पहले से स्थापित 'श्रीमद् राजचन्द्र विहार भवन, इडर, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, वडवा तथा श्रीमद् राजचन्द्र जन्म भुवन, ववाणिया आदि में इस देहधारी को स्निग्ध आमंत्रण भी प्राप्त हुए थे। उपर्युक्त सारे स्थानों में जब-जब इस देहधारी को स्थिर होने हेतु आमंत्रण मिला, तब-तब इस आत्मा में ऐसा अंतर्नाद सुनाई देता रहा कि तेरा उदय दक्षिण में है।'

दक्षिण भारत के कर्णाटक प्रदेश में गोकाक की जैन गुफाओं में दि. 22.02.1954 से दि. 22.05.1957 तक तीन वर्ष अखण्ड मौन पूर्वक की साधना यह देहधारी करके गया था, परन्तु तथा प्रकार के समवाय कारण के अभाव से हंपीतीर्थ पर आ नहीं सका। लेकिन आखिर में महाराष्ट्र के बोरड़ी गाँव में संवत् 2017 के प्रथम ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा पर्यंत के 21 दिन के अनायास सधे गए चिरस्मरणीय सत्संग प्रसंग के बाद महाराष्ट्र के कुम्भोज तीर्थ पर आया। वहाँ से गदग के कच्छी बंधु गदग ले आए। वहाँ से बेल्लारी

और होस्पेट के पूर्व परिचित मारवाड़ी बंधु वि.सं. 2017 के द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी के दिन इस देहधारी को हंपी ले आए।

सर्वप्रथम हंपी के रत्नकूट की गुफाओं में ही प्रवेश किया, और इस आत्मा में यकायक स्फुरणा हुई कि जिसे तू चाह रहा था वही तेरी पूर्व परिचित भूमि ! पूर्व में यहाँ पर अनेक साधकों ने विद्या की सिद्धियाँ प्राप्त की हैं इसलिए वह 'विद्याधर भूमि' कही गई है। इस वातावरण के स्पर्श से हृदय नाच उठा। अवसर देखकर साथ के भाविकों ने यहीं पर चातुर्मास के लिए सादर अनुरोध किया, जिसे इस देहधारी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इस उजड़े हुए स्थान को व्यवस्थित होने में कुछ समय लगने की संभावना के कारण यह देहधारी सामने के हेमकूट पर आए हुए अवधूत मठ की एक गुफा में ठहरा। वहाँ हंपी के तहसीलदार गुणानुरागी श्री बसलिंगप्पा आदि सत्संग में आए। स्वयं वे लिंगायती होने के कारण इस देहधारी की धार्मिक विचारधारा समझने हेतु कुछ प्रश्न पूछे। सात्त्विक समाधान से प्रभावित होकर उन्होंने इस देहधारी को यहीं पर स्थायी होने का सविनय आग्रह किया। बाद में उन्होंने होस्पेट कांग्रेस के वर्तमान प्रमुख एस.पी. घेवरचंद जैन आदि के समक्ष ऐसा प्रस्ताव रखा कि अगर आप स्वामीजी को हंपी में रहने का कबूल कराएँ तो आश्रम हेतु अमुक नाप की सरकारी जमीन मैं बिना मूल्य पट्टे पर दूँ। इस प्रस्ताव को उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया और जमीन निःशुल्क पट्टे पर प्राप्त हुई।

नामकरण

पट्टा किस नाम का बनाया जाए यह प्रश्न उपस्थित होने पर श्रीमद् परमकृपालुदेव के अलौकिक जीवन से संबंधित कुछ वर्णन करके उनके प्रति सबका आदरभाव उत्पन्न करवाया और बाद में 'श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम' के नाम का पट्टा करवाना ऐसा निश्चित करवाया गया। इस प्रदेश में तथा प्रकार के प्रचार के अभाव से परमकृपालु के प्रति कोई श्रद्धा भक्ति रखनेवाला नहीं था, परन्तु इस देहधारी के प्रति पूर्व परिचय के कारण कुछ लोगों को विश्वास होने के कारण उन्होंने वह बात मान ली।

विक्रम संवत् 2017 के आषाढ़ शुक्ला एकादशी को अत्यंत उल्लासपूर्वक इस 'श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम' की स्थापना हुई। गुफा मन्दिर में परमकृपालुदेव के चित्रपट की स्थापना की गई और ट्रस्टी मंडल गठित किया गया। निर्माण कार्य आगे बढ़ने लगा। पूर्व जन्मांतरों में परमकृपालु, श्री तीर्थंकर देव आदि अनेक महाज्ञानी सत्पुरुषों के उपकार के नीचे यह देहधारी दबा हुआ है। उनमें से दो सत्पुरुषों का उपकार इस देहजन्म में बार-बार स्मृति में आया करता है। एक स्वलिंग संन्यस्त युगप्रधान श्रीमद् श्री जिनदत्तसूरिजी, दूसरे गृहलिंग संन्यस्त युगप्रधान श्रीमद् श्री राजचन्द्रजी और इन उभय ज्ञातपुत्रों की इस जन्म में बार-बार असीम कृपा का अनुभव करती हुई यह आत्मा मंद गति से फिर भी सुदृढ़ रूप से आध्यात्मिक उन्नत श्रेणी पर आगे

बढ़ रही है। यह देहधारी जिनका निश्चयात्मक आश्रय ग्रहण करके, फिरकापरस्ती से मुक्त रहकर, निर्भय रूप से आराधना कर रहा है वैसे श्रीमद् राजचन्द्रजी के असीम उपकार-परम्परा की स्मृति हेतु उनका परम पवित्र नाम आश्रम के साथ जोड़ देने का इस देहधारी ने साहस किया है।

हम्पी में प्रथम चातुर्मास पूर्ण होने के पश्चात् रामनवमी के दिन निकटस्थ कृष्णापुरम जागीर के मालिक आनेगुंदी राज्य के राजगुरु रामानुज सम्प्रदाय के वयोवृद्ध आचार्य श्री तोलप्पाचार्य ने इस देहधारी को होस्पेट की जाहिर सभा में ले जाकर प्रवचन करवाया। आध्यात्मिक दृष्टि से रामायण के पात्रों का वर्णन सुनकर वे प्रमुदित हुए। उल्लास में आकर उन्होंने खड़े होकर जाहिर किया कि हंपी-रत्नकूट पर हमारे हक्क की जो भूमि है वह जितनी चाहिए उतनी आज से पूज्य स्वामीजी के चरणों में सादर अर्पित करता हूँ। सभाजनों ने इस भेंट की अनुमोदना व्यक्त की। बाद में मैसूर राज्य के उस समय के गृहप्रधान आर.एम. पाटिल आश्रम की मुलाकात पर पधारे और प्रभावित होकर इस रत्नकूट पर जो सरकारी भूमि थी वह सारी इस आश्रम को सादर भेंट देकर नि:शुल्क पट्टा करवा दिया। वे बार-बार आश्रम की मुलाकात पर आते हैं। इस प्रकार कृपालु की कृपा से ही इस आश्रम को 30 एकड़ के विस्तारवाला यह रत्नकूट सारा 'फ्री मार्केट ऑफ वेल्यु' मिला। इसके साथ परमकृपालु देव के नाम की सुगंध दक्षिण भारत में सर्वत्र प्रसरित हो गई।

आश्रम का भवन निर्माण और व्यवस्था

रत्नकूट पर गमनागमन हेतु 2.5 फर्लांग व्यवस्थित पैदल मार्ग, दो बड़ी गुफाएँ और आठ छोटी गुफाएँ हैं। एक बड़ी गुफा में चैत्यालय है। जहाँ श्री चन्द्रप्रभस्वामी की पाषाण प्रतिमाजी एवं श्री पार्श्वनाथजी की धातु की प्रतिमाजी विराजमान हैं। पूजा-विधि नित्य नियमित होती है। परम कृपालुदेव की 31 इंच की सुरम्य पाषाण प्रतिमाजी, चरण चिह्न एवं उनके चित्रपट स्थापित हैं, जिनके सन्मुख दो बार सत्संग भक्ति नियमित सम्पन्न होते हैं। इस गुफा मन्दिर की अंतर्गुफा में यह देहधारी आराधना करता है।

आश्रम में व्यवस्थित भोजनालय है, जिसमें सत्संग हेतु आनेवाले मुमुक्षुओं को दोनों समय नि:शुल्क भोजन दिया जाता है। बहनों और भाइयों के लिए ठहरने के अलग-अलग आवास हैं तथा कुछ भाविकों द्वारा अपने खर्च से बाँधे हुए निवास स्थान भी हैं। फिर, एक विशाल जिनालय युक्त सत्संग भवन तथा पन्द्रह से बीस मकान निर्मित करवाने वाले भाविक तैयार हैं। परन्तु स्वयं देखभाल की उन्हें फुर्सत नहीं है जिससे यह संस्था ऐसे किसी सुयोग्य व्यक्ति की प्रतीक्षा में है कि जो तथा प्रकार की सेवा दे सके।

संस्था का हिसाब प्रत्येक कार्तिक पूर्णिमा के दिन परीक्षणपूर्वक सभा में प्रस्तुत किया जाता है। इस संस्था के माध्यम से अब तक अनेक नए-नए भाविक श्रीमद् परमकृपालु देव द्वारा दर्शित मार्ग के

प्रति श्रद्धावान हुए हैं और होते जा रहे हैं। रहने की सुविधा बढ़ने पर वह संख्या उत्तरोत्तर बढ़ने की संभावना है।

साधकीय नियमावली

1. मतपंथ के आग्रहों का परित्याग और पन्द्रह भेद से सिद्ध के सिद्धांतानुसार धर्म समन्वय।

2. सप्तव्यसन, रात्रि भोजन, कंदमूल आदि अभक्ष्य भोजन और अब्रह्मचर्यादि के त्याग का यथा-शक्ति प्रतिज्ञापूर्वक आत्मभान और वीतरागता का अभ्यास।

3. सुबह, दोपहर, शाम व्यक्ति किंवा सामुदायिक रूप से निर्धारित भक्तिक्रम का और गुरुदेव के प्रवचनों का श्रवण आराधन। तदुपरांत जिनको सामायिक-प्रतिक्रमण आदि आवश्यक क्रिया करनी हो उनको अपनी-अपनी रीति से करने की स्वतंत्रता फिर भले वह दिगम्बर आम्नाय वाला हो अथवा श्वेताम्बर, किंवा मूर्तिपूजक हो अथवा मुहपत्ती बंधक।

4. प्रतिदिन प्रात: गुफा मन्दिर, गुरुमन्दिर, दादावाड़ी, मातृमन्दिर, कायोत्सर्ग राजप्रभु की प्रक्षाल पूजा एवं आरती। सायंकाल को भी आरती, भक्ति। प्रति रविवार प्रात: तरुतल ध्यान/प्रतिमा ध्यान: गुरुदेव परम कृपालु देव प्रणीत। फिर मध्यरात्रि पर्यंत क्रमबद्ध भक्ति-

स्वाध्याय-मंत्रधून का सामूहिक आराधन।

प्रत्येक शुक्ला द्वितीया एवं पूर्णिमा को अखण्ड रात्रि का कार्यक्रम, जिसमें क्रमबद्ध भक्ति, पाक्षिकादि अतिचार, आलोचना, खामणा, आध्यात्मिक भजन एवं मंत्रधून, प्रभात में प्रार्थनादि।

5. श्रीमद् परमकृपालु देव की जन्म तथा पुण्यतिथि को, पर्युषण पर्व में, आश्रम स्थापना दिन पर, पूज्य श्री सहजानंदघनजी एवं पूज्य माताजी धनदेवी की जन्म और पुण्यतिथि को विशेष आयोजनपूर्वक आराधना।

6. दीपावली के तीन दिन अहोरात्र सामूहिक अखण्ड मंत्र धून।

7. प्रतिदिन प्रात: 10 से 12 बजे और दोपहर 3 से 5 बजे नियमित सत्संग, स्वाध्याय, गुरुदेव टेइप-प्रवचन श्रवण, जिसमें मुख्य विषय होता है- परम कृपालु देव के वचनाशय द्वारा आत्म साक्षात्कार और उस अनुभव मार्ग में प्रवेश करने की साधनपद्धति।

नोट : सोने-बैठने हेतु चटाइयों के सिवा अन्य कोई सुविधा जान-बुझकर यहाँ नहीं रखी गई है। सत्संग अर्थ आनेवाले जैन मुमुक्षुओं को चाय, नाश्ता और दो बार भोजन नि:शुल्क दिया जाता है। ॐ आनन्द आनन्द आनन्द सहजानंदघन।

(पूज्य श्री सहजानंदघनजी के लेख से किंचित् संशोधित, परिवर्धित।)

श्रीमद् राजचन्द्र
उपास्यपद पर उपादेयता

इस अवसर्पिणी काल में इस क्षेत्र में 10 अच्छेरे (आश्चर्यजनक घटनाएँ) पूर्व में माने गए हैं। उनके पश्चात् अच्छेरा रुप श्रीमद् राजचन्द्रजी का इस क्षेत्र में जन्म हुआ। महाविदेह का ही वह परम-पात्र भूल से इस भरतक्षेत्र में आ चढ़ा और तत्पश्चात् महाविदेह सिधार गया। बाल्यकाल से बीता हुआ उनका विदेही जीवन उनकी महाविदेही दशा की प्रतीति कराता है।

अपनी लेखिनी द्वारा स्वपर हितार्थ निर्दंभ-रूप से लिखित आत्मचर्या में श्रीमद् के अलौकिक जीवन के स्पष्ट दर्शन होते हैं। तत्संबंधित कुछ जीवन प्रसंग अन्य लेखकों द्वारा आलेखित अनेक ग्रंथों में कुछ स्थानों में पाठक वृंद को देखने को मिलेंगे, जबकि इस लेख में श्रीमद् की क्षायिक सम्यक् दृष्टि और उत्कृष्ट अप्रमत्तदशा के कारण आगम प्रमाण एवं अनुभव प्रमाण से उपास्यपद पर उपादेयता सिद्ध करने का यत्किंचित् प्रयत्न पाठकवृंद देख सकेगा। जिसका तटस्थ बुद्धि से अवगाहन करने से गुणानुरागी साहसिक साधकों को अद्भुत प्रेरणा प्राप्त होगी।

श्रीमद् राजचन्द्रजी क्षायिक सम्यग्दृष्टा, अखण्ड स्वरूपज्ञानी और उत्कृष्ट अप्रमत्त योगी थे। इस बात की प्रतीति करने हेतु सर्वप्रथम

उनकी आत्मचर्या का निरीक्षण करने चलें, हम उनके ही 'वचनामृत' ग्रंथ में प्रवेश करें-

'आत्मा ज्ञान को सम्प्राप्त हुआ यह तो नि:शंक है, ग्रंथि भेद हुआ यह तीन काल में सत्य वार्ता है।' - पत्रांक 170

'अन्तिम स्वरूप समझने में, अनुभव करने में अल्प भी न्यूनता नहीं रही है... परिपूर्ण लोकालोक ज्ञान उत्पन्न होगा... परिपूर्ण स्वरूपज्ञान तो उत्पन्न हुआ ही है।' - पत्रांक 187

'इस जगत के प्रति हमारा परम उदासीन भाव रहता है, वह नितांत सुवर्ण का बन जाए तो भी हमारे लिए तृणवत् है।' - पत्रांक 214

'एक पुराण पुरुष और पुराण पुरुष की प्रेमसम्पत्ति के बिना हमें कुछ सुहाता नहीं है, हमें किसी पदार्थ में रुचि ही रही नहीं है, कुछ प्राप्त करने की इच्छा होती नहीं है। व्यवहार किस प्रकार चलता है उसका होश (भान) नहीं है, जगत किस स्थिति में है उसकी स्मृति रहती नहीं है, किसी शत्रु-मित्र में भेदभाव रहा नहीं है, कौन शत्रु है और कौन मित्र है इसका ख्याल रखा नहीं जाता है, हम देहधारी हैं या नहीं इसे जब स्मरण करते हैं तब बड़ी कठिनाई से जान पाते हैं।' - पत्रांक 255

'आत्मा ब्रह्मसमाधि में है, मन वन में है, एक दूसरे के आभास से अनुक्रम से देह कुछ क्रिया करती है।'- पत्रांक 291

'ज्ञानी की आत्मा का अवलोकन करते हैं और उनके समान होते

हैं। अपूर्व वीतरागता के होते हुए भी व्यापार संबंधित कुछ प्रवर्तन कर सकते हैं, और अन्य भी खाने-पीने आदि के प्रवर्तन बड़ी कठिनाई से कर पाते हैं। चित्त का भी अधिक संग नहीं है, आत्मा आत्मभाव से रहती है। समय-समय पर अनंतगुणविशिष्ट आत्मभाव वर्धित होता हो ऐसी दशा रहती है, जो प्राय: आभासित होने नहीं दी जाती।' - पत्रांक-313

'हमें जो निर्विकल्प नामक समाधि है, वह तो आत्मा की स्वरूपपरिणति प्रवर्तित होने के कारण है। आत्मा के स्वरूप के संबंध में तो हमें प्राय: निर्विकल्पता ही रहनी संभवित है, क्योंकि अन्यभाव के विषय में प्रधानतया हमारी प्रवृत्ति ही नहीं है। श्री तीर्थंकरदेव का अंतर आशय प्राय: मुख्यतया अभी इस क्षेत्र में किसी में हो तो वे हम होंगे ऐसा हमें दृढ़ रूप से भासित होता है। क्योंकि हमारा जो अनुभवज्ञान है उसका फल वीतरागता है, और वीतराग-कथित जो श्रुतज्ञान है वह भी उसी परिणाम का हेतु दिखाई देता है, इसलिए हम उनके (तीर्थंकर देव के) अनुयायी वास्तव में हैं, सच्चे हैं।' - पत्रांक 322

'निर्विकल्प समाधि का ध्यान क्षणभर के लिए भी हटता नहीं है।' - पत्रांक 329

'अनेकानेक ज्ञानीपुरुष हो गए हैं, उनमें हमारे जैसा उपाधि प्रसंग और चित्त स्थिति उदासीन-अतिउदासीन, वैसे प्राय: तुलना में अल्प हुए हैं... हमारा निश्चल अनुभव है कि देह होते हुए भी मनुष्य पूर्ण

वीतराग हो सकता है।' - पत्रांक 334

'हम कि जिसका मन प्राय: क्रोध से, मान से, माया से, लोभ से, हास्य से, रति से, अरति से, भय से, शोक से, जुगुप्सा से अथवा शब्दादिक विषयों से अप्रतिबद्ध जैसा है, परिवार से, धन से, पुत्र से, वैभव से, स्त्री से, या देह से मुक्त जैसा है।' - पत्रांक 347

'समय मात्र के लिए भी अप्रमत्तधारा को विस्मृत नहीं करने वाला ऐसा जो आत्माकार मन, वह वर्तमान समय में उदय के अनुसार प्रवृत्ति करता है।' - पत्रांक 353

'मन में बार-बार विचार करने से निश्चय हो रहा है कि किसी भी प्रकार से उपयोग बदल कर अन्यभाव में अपनापन (ममत्व) नहीं होता, और अखण्ड आत्म ध्यान रहा करता है।' - पत्रांक 366

'हम तो पाँच महीने से जगत, ईश्वर और अन्यभाव इन सभी के विषय में उदासीनतापूर्वक बरतते रहते हैं। मोक्ष तो हमें सर्वथा निकटता से रहता है, यह तो नि:शंक वार्ता है। वैशाख कृष्णा 6, मंगल 1948' - पत्रांक 368

'अविच्छिन्नरुप से जिनके विषय में जिन्हें आत्मध्यान बना रहता है ऐसे श्री..... के प्रणाम प्राप्त हों। जिसमें अनेक प्रकार की प्रवृत्ति बनी रहती है, ऐसे योग में अभी तो रहते हैं। उनमें आत्मस्थिति उत्कृष्टरूप से विद्यमान रहती देखकर श्री..... के चित्त को स्वयं अपने आपसे नमस्कार करते हैं।' - पत्रांक 370

'अविषम रूप से आत्मध्यान जहाँ प्रवर्तमान रहता है, वास करता

है, ऐसे जो श्री राजचन्द्र उनके प्रति बार-बार नमस्कार।' - पत्रांक 376

'छह माह सम्पूर्ण हुए जिन्हें परमार्थ के प्रति एक भी विकल्प उत्पन्न नहीं हुआ है ऐसे श्री..... को नमस्कार।' - पत्रांक 378

'यद्यपि हमारा चित्त नेत्र जैसा है, नेत्र में दूसरे अवयवों की तरह एक रजकण भी सहन हो नहीं सकता। उसमें वाणी का उठना, समझाना, यह करना अथवा यह नहीं करना ऐसा चिंतन करना बड़ी कठिनाई से होता है। बहुत-सी क्रियाएँ तो शून्यत्व की भांति होती हैं..... प्रत्येक रूचि समाधान पा चुकी है यह आश्चर्यरूप बात कहाँ कहें ? आश्चर्य होता है ! यह जो देह मिली है वह पूर्व काल में कभी भी मिली नहीं थी, भविष्यकाल में भी प्राप्त होने वाली नहीं है। धन्यरूप-कृतार्थरूप ऐसे जो हम.....' - पत्रांक 385

'जीवितव्य को केवल उदयाधीन करने से- होने से विषमता मिटी है। आपके प्रति, स्वयं के प्रति, अन्य के प्रति किसी प्रकार का विभाविक भाव प्राय: उदय को प्राप्त नहीं होता। पूर्वोपार्जित ऐसा जो स्वाभाविक उदय तदनुसार देहस्थिति है, आत्मरूप से उसका अवकाश अत्यंत अभावरूप है।' - पत्रांक 396

'जिस पुरुष की दुर्लभता चौथे काल में थी, वैसे पुरुष का योग इस काल में होने जैसा हुआ है,..... ईश्वरेच्छा से जिन किन्हीं जीवों का कल्याण वर्तमान में भी सम्भव होगा निर्मित होगा वह तो वैसा होगा, और वह अन्य से नहीं, परन्तु हम से (हमारे द्वारा), ऐसा

भी यहाँ मानते हैं..... जगत में किसी भी प्रकार से जिसकी किसी भी जीव के प्रति भेद दृष्टि नहीं है ऐसे श्री..... निष्काम आत्मस्वरूप के नमस्कार प्राप्त हो।' - पत्रांक 398

'चित्त के विषय में जैसी मुक्त दशा जब से इस उपाधियोग का आराधन करते हैं तब से रहती है, वैसी मुक्त दशा अनुपाधि प्रसंग में भी रहती नहीं थी, ऐसी निश्चलदशा (क्षायिक सम्यक्दशा) मार्गशीर्ष शुक्ला 6 (संवत् 1948) से एक धारा से चली आ रही है।' - पत्रांक 400

'अशरीरीभाव इस काल में नहीं है ऐसा यहाँ कहें तो इस काल में हम स्वयं नहीं है, ऐसा कहने तुल्य है।' - पत्रांक 411

'अव्याबाध स्थिति के विषय में जैसा था, वैसा का वैसा स्वास्थ्य है।' - पत्रांक 411

'मन, वचन, काया के योग में से, जिन्हें केवली स्वरूप भाव होते अहंभाव मिट गया है। विपरीत काल में एकाकी होने से उदास।' - पत्रांक 466

'जैसी दृष्टि इस आत्मा के प्रति है, वैसी दृष्टि जगत के सर्व आत्माओं के विषय में है। जैसा स्नेह इस आत्मा के प्रति है, वैसा स्नेह सर्व आत्माओं के प्रति रहता है..... जैसा सर्व देहों के प्रति बर्ताव करने का प्रकार रखते हैं, वैसा ही प्रकार इस देह के प्रति रहता है..... केवल आत्मरूपता के कार्य में प्रवर्तन होने से जैसी उदासीनता जगत के सर्व पदार्थों के प्रति रहती है, वैसी (उदासीनता)

आत्मीय माने जानेवाले स्त्री आदि पदार्थों के प्रति रहती है..... सर्व प्रकार की वर्तना निष्कपट रूप से उदय की है। सम विषमता नहीं-सहजानंद स्थिति है।' - पत्रांक 469

'आत्मा सर्व से अत्यंत प्रत्यक्ष है ऐसा परम पुरुष ने किया हुआ निश्चय वह भी (हमें) अत्यंत प्रत्यक्ष है।' - पत्रांक 579

'एक आत्मपरिणाम के सिवा अन्य सर्व परिणामों के विषय में उदासीनता रहती है; और जो कुछ किया जाता है वह अपेक्षित भान के सौवें अंश से भी नहीं होता।' - पत्रांक 583

'मन:पर्यव ज्ञान को भी पर्यायार्थिक ज्ञान समझकर उसे विशेष ऐसे ज्ञानोपयोग में गिना है; उसका सामान्य ग्रहण रूप विषय भासित नहीं होने से दर्शनोपयोग में गिना नहीं है ऐसा सोमवार मध्याह्न को कहा था, तदनुसार जैन दर्शन का अभिप्राय आज (प्रत्यक्ष) देखा है। श्रावण शुक्ला 10, बुध 1951' - पत्रांक 625

'मोक्ष के सिवा जिसकी किसी भी वस्तु की इच्छा अथवा स्पृहा नहीं थी और मोक्ष की इच्छा भी अखण्ड स्वरूप में रमणता होने से निवृत्त हो गई है, उसे हे नाथ ! तू तुष्टमान होकर भी अन्य क्या देने वाला था ?'

'हे कृपालु ! तेरे अभेद स्वरूप में ही मेरा निवास है वहाँ अब तो लेने-देने की भी झंझट से मुक्त हुए हैं और वही हमारा परमानंद है।'

'कल्याण के मार्ग को और परमार्थ स्वरूप को यथार्थ रूप से नहीं समझनेवाले अज्ञानी जीव अपनी मतिकल्पना से मोक्षमार्ग की कल्पना

करकें विविध उपायों में प्रवर्तन करते हुए भी मोक्ष प्राप्त करने के बजाय संसार परिभ्रमण करते हैं; यह जानकर हमारा निष्कारण करुणाशील हृदय रो रहा है।'

'वर्तमान में विद्यमान वीर को भूला देकर भूतकाल की भ्रमणा में वीर को खोजने के लिए भटकते-टकराते जीवों को श्री महावीर का दर्शन कहाँ से होगा ?'

'हे दुषमकाल के दुर्भागी जीवों ! भूतकाल की भ्रमणा को छोड़कर वर्तमान में विद्यमान ऐसे महावीर की शरण में आओ तो तुम्हारा श्रेय ही है।'

'संसारताप से त्रस्त-संतप्त और कर्मबंधन से परिमुक्त होने के इच्छुक परमार्थप्रेमी जिज्ञासु-जीवों की त्रिविध तापाग्नि को शांत करने के लिए हम अमृतसागर हैं। मुमुक्षु जीवों का कल्याण करने हेतु हम कल्पवृक्ष ही हैं।'

'अधिक क्या कहना ? इस विषमकाल में परमशान्ति के धामरूप हम दूसरे श्री राम किंवा श्री महावीर ही हैं, क्योंकि हम परमात्मस्वरूप हुए हैं।'

'यह अंतर अनुभव परमात्मस्वरूप की मान्यता के अभिमान से उद्‌भुत बना हुआ नहीं लिखा है, परन्तु कर्मबंधन से दुःखी हो रहे जगत के जीवों पर परम कारुण्यभाव उत्पन्न होने से, उनका कल्याण करने की ओर उनका उद्धार करने की निष्कारण करुणा ने ही, यह हृदय चित्रण, प्रदर्शित करने की लिखने की प्रेरणा की है। मुम्बई चैत्र

शुक्ला त्रयोदशी 1952 ॐ श्री महावीर (निजी)।' - पत्रांक 680 (महावीर जयंती)

'अति त्वरा से प्रवास पूर्ण करना था, वहाँ बीच में ही सहारा का मरुस्थल सम्प्राप्त हुआ। सर पर बहुत बोझ रहा था उसे आत्मवीर्य के द्वारा अल्पकाल में जिस प्रकार वेदन किया जाए उस प्रकार आयोजन व्यवस्था (प्रघटना) करते हुए पैरों ने निकाचित उदयमान थकान ग्रहण की।'

'जो स्वरूप है वह अन्यथा होता नहीं, यही अद्‌भुत आश्चर्य है। अव्याबाध स्थिरता है। शरीर-प्रकृति उदयानुसार मुख्य रूप से कुछ अशाता का वेदन कर शाता की ओर उन्मुख है। ॐ शांति;' - पत्रांक 951

'यथा हेतु जो चित्त का, सत्य धर्म का उद्धार रे,
होगा अवश्य इस देह से, हुआ ऐसा निर्धार रे,'
... धन्य रे दिन यह अहो
'आई अपूर्व वृत्ति अहो ! होगा अप्रमत्त योग रे,
निकट केवल प्राय: भूमिका, स्पर्श कर देह वियोग रे, धन्य
अवश्य कर्म का भोग है, भुगतना अवशेष रे,
उससे, देह एक ही धार कर जाएँगे स्वरूप-स्वदेश रे, धन्य'
हस्त नोंध (हाथ नोंध) 1-पृ. 64

उपर्युक्त उद्धरणों से यह सिद्ध हुआ कि श्रीमद् राजचन्द्रजी को 1947 में निश्चय नय से शुद्ध समकित प्रकाशित हुआ था। उसकी

अखंड धारा से वि.सं. 1948 की मार्गशीर्ष शुक्ला 6 सोमवार को क्षायिक सम्यक्त्व प्रकट हुआ। जिससे वे अखण्ड स्वरुप ज्ञानी बीजकेवली बने।

निरभ्र आकाश में दो कला निरावरण चन्द्रमा की भाँति अनंतानुबंधी कषाय और दर्शनमोह रहित चिदाकाश में आत्मचन्द्र का दो कला निरावरण रूप में अखंडधारा से सतत सहज प्रकाशित बना रहना वह 'जघन्य बीज केवलज्ञान' कहा जाएगा, और चतुर्दशी के चन्द्रमा की भांति आत्मचन्द्र का प्रकाशित होना 'उत्कृष्ट बीज केवलज्ञान' कहा जाएगा। बीच का अंतराल 'मध्यम बीज केवलज्ञान' का है। जब पूर्णिमा के सर्वथा निरावरण पूर्णचन्द्र की भांति आत्मचन्द्र का सर्वथा निरावरणत्व हो तब 'सम्पूर्ण केवलज्ञान' हुआ माना जाएगा।

बीजभूत एवं सम्पूर्ण- इस प्रकार केवलज्ञान दो प्रकार से। हाथनोंध 1-पृ. 175 में श्रीमद् ने अनुभव प्रमाण से जो लिखा है वह उपर्युक्त चिंतनों से बुद्धिगम्य हो सकने योग्य है। फिर दृश्य पदार्थ की अपेक्षा से ही सिर्फ केवल ज्ञान की व्याख्या इस काल में जो प्रचलित है वह अपूर्ण है। उसके साथ जीव की अपेक्षा से व्याख्या मिलाएँ तब ही वह सम्पूर्ण हुई मानी जाएगी। क्योंकि जैन न्याय ग्रंथों में 'स्वपर व्यवसायी ज्ञानं प्रमाणम्' अर्थात् जो 'स्व' वह स्वरूप से और 'पर' वह पररूप से इस प्रकार स्व-पर जो जैसा है वैसा भिन्न-भिन्न बताए वह ज्ञान प्रमाणभूत माना गया है। इस न्याय से केवलज्ञान की प्रचलित

व्याख्या के साथ टूटती कड़ियों को जोड़ने रूप श्रीमद् ने आत्मसिद्धि शास्त्र में जीव की अपेक्षा से केवलज्ञान की परिभाषा/व्याख्या बतलाई है।

जिनागम में सयोगी भवस्थ केवलज्ञान, अयोगी भवस्थ केवल दो-दो प्रकार का और सिद्ध केवलज्ञान इत्यादि भेद देखने में आते हैं वे भी जीव सापेक्ष हैं। उसकी पूर्ति भी श्रीमद् प्रकाशित परिभाषा द्वारा ही सम्भव है।

इस रहस्योद्घाटन से यह सिद्ध हुआ कि द्वितीया (बीज) के चन्द्र की भांति आत्मचन्द्र का बीज केवलज्ञान से प्रत्यक्ष दर्शन इस काल में हो सकता है-

'वह केवल को बीज ज्ञानी कहे,
निज को अनुभव बतलाय दिए।'

- श्रीमद् राजचन्द्र वचनामृत

द्वितीया से चतुर्दशी पर्यंत के निरावरण चन्द्र की भांति जितना निरावरणत्व आत्मचन्द्र का हो उतना आत्मा का कर्म-राहु से मोक्ष भी हो और वह इस काल में हो सकता है। फिर भी प्रचलित उपदेश प्रवाह में 'इस काल में इस क्षेत्र में आत्मा का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं ही हो सकता है और मोक्ष भी नहीं ही हो सकता है' ऐसा प्रचार जैनों में चल रहा है वह भी इस काल का एक आश्चर्य (अच्छेरा) ही है। और इस आश्चर्य (अच्छेरे) के अंग रूप ऐसा भी प्ररूपित होता है कि 'इस भरत में अभी किसी को क्षायिक समकित हो ही नहीं

सकता।' चलें ! तो हम अब जैन शास्त्रों में प्रवेश करके देखें कि इस काल में इस क्षेत्र में जीव क्षायिक समकित पा सकता है या नहीं ?

'क्षायिक सम्यक्त्व किसे और किस की निश्रा में हो ?'

'दर्शन मोहनीय कर्म क्षय होने का जो क्रम है, उस क्रम का प्रारंभ केवली अथवा श्रुतकेवली की निकट निश्रा में ही हो सकता है और उसका प्रारंभ करने वाला कर्मभूमि में उत्पन्न हुआ मनुष्य ही हो।'

(गोम्मटसार - जीव कांड - गाथांक 647 के तीन चरण)

इस सिद्धांतानुसार इस क्षेत्र में वर्तमान क्षण में कोई केवली अथवा श्रुतकेवली नहीं है इसलिए उनकी निश्रा के अभाव से किसी को क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति हो नहीं सकती। ऐसा प्रवाद चालू हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है, परन्तु उसी गाथा का चौथा चरण है- 'णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ' अर्थात् यदि कभी दर्शन मोह का सर्वथा क्षय होने से पूर्व ही अपूर्ण कार्य से उस क्षपणक का आयुष्य पूर्ण हो जाए तो अपने अपूर्ण कार्य की परिसमाप्ति चारों गतियों में से किसी भी गति में जाकर वह जीव कर सकता है। वहाँ उसे पूर्व संस्कारबल सहायक होता है। इसलिए अन्याश्रय अनिवार्य नहीं होता है। इस दिगम्बर सिद्धांत के अनुसार श्वेताम्बर कर्मसिद्धांत का भी कथन मिल जाता है।

उपरांत 800 वर्ष पूर्व हो गए युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी ने श्री महानिशीथसूत्र की साक्षी देकर स्वरचित 'उपदेशकुलक' में युगप्रधानों को क्षायिक समकिती बतलाया है। आर्य सुधर्मास्वामी से लेकर

दुप्पसह साधु पर्यंत युगप्रधानों की 2004 संख्या बतलाई है, जो पाँचवें आरे के अंत पर्यंत का क्रम है।

उपर्युक्त आगम प्रमाण से इस क्षेत्र में पाँचवें आरे के अंत पर्यंत कोई विरल जीव पूर्व संस्कारबल से क्षायिक समकित प्राप्त कर सकते हैं यह निर्विवाद सत्य है। इस तथ्य को अनुभव प्रमाण से श्रीमद् ने सिद्ध कर दिया है। किसी को मानना, नहीं मानना यह उनकी मर्जी की बात है।

शंका : कदापि श्रीमद् को क्षायिक सम्यक्त्व हुआ हो तो भले हुआ, परन्तु इससे वे कोई परमात्मा नहीं बन जाते हैं, फिर भी वे अपने आपको परमात्मा रूप में गिनाएँ और भक्तगण उनकी जिनवत् आराधना करें यह कहाँ का न्याय ? यह ढंग तो श्वेताम्बर अथवा दिगम्बर किसी को भी मान्य नहीं है। क्योंकि साधु दीक्षा के पूर्व ही कदाचित किसी को केवलज्ञान हो तो भी जब देवता उन्हें मुनिवेष दें और वे अंगीकार करें तब ही उन्हें वंदनादि किया जा सकता है, उसके पूर्व नहीं ही- यह श्वेताम्बर कथन है और कम से कम अंतर्मुहूर्त काल पूर्व ही मुनिवेष धारण किए बिना तो किसी को भी केवलज्ञान हुआ नहीं है और होनेवाला नहीं है। यह दिगम्बर कथन है। जब श्रीमद् ने न तो ओघा मुहपत्ति या पींछी कमंडल लिए, न तो वे सम्पूर्ण केवली बन सके, फिर भी वे उपास्यपद पर कैसे उपादेय हो सकते हैं ?

समाधान : जिसे दर्शन विशुद्धि करनी हो वैसे आत्मार्थी साधक

के लिए दर्शन विशुद्धि के पुष्ट निमित्त के रूप में आत्मज्ञानी और सर्वज्ञ वीतराग दोनों एक समान उपास्य हैं ऐसा स्वीकार दिगम्बर-श्वेताम्बर उभय श्रेणी के शास्त्रों में प्रकट दिखाई देता है। यथा-

'सर्वज्ञ वीतरागस्य। स्ववशस्यास्य योगिनः।
न कामपि भिद्दां क्वापि। तां विग्नो हा ! जडा वयम्॥'

- नियमसार गाथांक 146 टीका-पद्यांक 256

अर्थ- सर्वज्ञवीतराग में तथा जिसका मन आत्माकार है वैसे इस स्ववश योगी में कभी भी कोई भी भेद नहीं है, फिर भी ओहो। हम जड़ जैसे हैं कि जिससे उनमें भेद मानते हैं।

'खाइगसम्मदिट्ठिं जुगप्पहाणागमं च दुप्पसहं।
दसवेयालियकहियं जिणं व पूएज्ज तियसवई॥25॥
तं तह आराहेज्जा जह तित्थयरे य चउवीसं॥22॥
एवं नियनियकाले जुगप्पहाणो जिण व्व दट्ठव्वो॥26॥
..... महानिसीहाओ भणियमिणं॥34॥'

श्री जिनदत्तसूरि कृत 'उपदेशकुलकम्'

श्री महानिशीथ सूत्र की साक्षी से आगम प्रमाण और अनुभव प्रमाण से युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी कह गए कि 'क्षायिकदृष्टिवंत की, युगप्रधानों की, आगम की तथा जो सिर्फ दशवैकालिक सूत्र कहेंगे उन दुप्पसह साधु की भी श्री जिनेश्वर भगवान की तरह त्रिदशपति अर्थात् इन्द्र पूजा करें।'

इस प्रकार अपने-अपने समय में विद्यमान युगप्रधानों को जिनेश्वर

भगवान तुल्य देखें, श्रद्धान करें। उनकी चौवीस तीर्थंकरों की भांति ही आराधना करें। अर्थात् तीर्थंकरों में और युगप्रधानों में उपास्य की दृष्टि से भेद ना समझें।

फिर उपर्युक्त आगम प्रमाण और अनुभव प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाण से श्रीमद् की अंतरात्मा में नेपथ्यध्वनि प्रकट हुई और उसे सुनकर पत्रारूढ़ करते हुए परमकृपालु ने बतलाया कि-

'परमात्मा और आत्मा का एक रूप हो जाना पराभक्ति की अन्तिम हद है। एक उसी लय का रहना वह पराभक्ति है... वह लय आना, परमात्मा को निरंजन और निर्देह रूप से चिंतन करने पर, जीव के लिए विकट है, इसलिए जिसे परमात्मा का साक्षात्कार हुआ हो ऐसा देहधारी परमात्मा उस पराभक्ति का कारण है। उस ज्ञानी पुरुष के सर्व चरित्र में ऐक्यभाव का लक्ष्य होने से उसके हृदय में विराजमान परमात्मा का ऐक्यभाव होता है और यही पराभक्ति है। ज्ञानी पुरुष और परमात्मा में अंतर ही नहीं है; और जो कोई अंतर मानता है, उसे मार्ग की प्राप्ति परम विकट है। ज्ञानी तो परमात्मा ही है। और उसकी पहचान के बिना किसी को परमात्मा की प्राप्ति हुई नहीं है। इसलिए सर्व प्रकार से भक्ति करने योग्य ऐसे देहधारी ज्ञानीरूप परमात्मा की दिव्य मूर्ति की नमस्कारादि भक्ति से लेकर पराभक्ति के अंत तक एक लय से आराधना करना ऐसा शास्त्र लक्ष है। परमात्मा इस देहधारी रूप में प्रकट हुआ है ऐसी ही ज्ञानीपुरुष के प्रति जीव की बुद्धि होने से भक्ति का उदय होता है और वह भक्ति क्रमश: पराभक्ति

रूप बन जाती है... पंच परमेष्ठी मंत्र में 'णमो अरिहंताणं' पद के पश्चात् सिद्ध भगवान को नमस्कार किया है, यह बात ही भक्ति के लिए ऐसा सूचित करती है कि प्रथम ज्ञानीपुरुष की भक्ति और यही परमात्मा की प्राप्ति और भक्ति का निदान है।' - पत्रांक 223

'सजीवन मूर्ति के लक्ष के बिना जो कुछ भी किया जाता है वह सब जीव के लिए बंधन है- यह हमारा हृदयगत भाव है।' - पत्रांक 198

'हे पुराण पुरुष ! हम तुझमें और सत्पुरुष में कोई भेद ही समझते नहीं हैं, तेरी अपेक्षा हमें तो सत्पुरुष ही विशेष प्रतीत होते हैं, क्योंकि तू भी उनके आधीन ही रहा है, और सत्पुरुष को बिना पहचाने हम तुझे नहीं पहचान सके, यही तेरी दुर्घटता हमारे भीतर सत्पुरुष के प्रति प्रेम उत्पन्न करती है।' - पत्रांक 213

'पूर्व काल में हो गए अनंतज्ञानी यद्यपि महाज्ञानी हो गए हैं, परन्तु उससे कुछ जीव का दोष जाता नहीं, अर्थात् जीव में अभी मान हो तो पूर्वकाल में हो गए ज्ञानी कहने नहीं आते, परन्तु अभी इस समय जो प्रत्यक्ष ज्ञानी विराजमान हों वे ही दोष को बतलाकर दूर कर सकते हैं। जिस प्रकार दूर के क्षीर समुद्र से यहाँ के तृषापुर की तृषा तृप्त नहीं होती, परन्तु मीठे पानी का एक लोटा (भी) यहाँ हो तो उससे तृषा शांत होती है।' - पत्रांक 466

'किसी प्रत्यक्ष कारण का आधार लेकर, चिंतन कर, परोक्ष चले आते हुए सर्वज्ञ पुरुष को केवल सम्यगदृष्टि से भी पहचाना जाए तो

उसका महत् फल है, और यदि वैसा न हो तो सर्वज्ञ को सर्वज्ञ कहने का कोई आत्मा से संबंधित फल नहीं है, ऐसा अनुभव में आता है।'

'प्रत्यक्ष, सर्वज्ञ पुरुष को भी (अगर) किसी कारण से विचार से, अवलंबन से, सम्यग्दृष्टि स्वरूप से भी नहीं जाना हो तो उसका आत्म प्रत्ययी फल नहीं है। परमार्थ से उनकी सेवा-असेवा से जीव को कोई जातिभेद नहीं होता। इसलिए उसे किसी सफल कारण रूप से ज्ञानीपुरुष ने स्वीकार नहीं किया है ऐसा दिखाई देता है।' - पत्रांक 504

उपर्युक्त आगम और अनुभव प्रमाण के स्वल्प उद्धरणों से यह सिद्ध हुआ कि 'आत्मज्ञानी और सर्वज्ञ वीतराग दोनों एक समान उपास्य हैं' इस प्रकार दिगम्बर श्वेताम्बर उभय परम्परा के प्राचीन आचार्य कह गए हैं।

फिर भावनिर्ग्रंथ को द्रव्यलिंगता के साथ अमुक निश्चित वेशभूषा और क्रियाकांड का कोई एकांतिक अनिवार्य संबंध नहीं यह भी उभय जैन परम्परा के शास्त्र कहते हैं। जैसा कि- समयसार में कहा है कि 'पाखंडी लिंगाणि व गिहिलिंगाणि व बहुप्पयाराणि। ण हु होदि मोक्खमग्गो धेत्तुं वदंति मूढ़ा लिंगमिणं मोक्खमग्गोत्ति ॥408॥ ण हु होदि मोक्खमग्गो लिंगं जं देहणिम्ममा अरिहा। लिंगं मुइत्तु दंसणणाण चरिताणि सेयंति ॥409॥ णवि एस मोक्खमग्गो पाखंडीगिहिमयाणि लिंगाणि। दंसणणाण चरित्ताणि मोक्खमग्गं जिणा विंति॥ तम्हा दुहित्तु लिंगे सागारणगारएहिं वा गहिए। दंसणणाणचरित्ते अप्पाणं जुंज

मोक्खपहे॥'

अर्थ : नाना प्रकार के साधु-पाखंडी वेश और गृहस्थ वेश धारण करके मूढ़ अज्ञानीजन ऐसी एकांतिक प्ररूपणा करते हैं कि 'यह वेश ही मोक्षमार्ग है।' उन्हें अप्रमत्त योगी आचार्य कुंदकुंद इस प्रकार समझाते हैं कि- 'वेश कोई मोक्ष का मार्ग नहीं है', क्योंकि अर्हंतदेव भी देह से निर्मल होने से उल्टे देहाश्रित वेशभूषा को तजकर दर्शन-ज्ञान चारित्र को भजते हैं। इसलिए निश्चय से साधु स्वांग या गृहस्थस्वांग मोक्षमार्ग नहीं है क्योंकि वह शरीराश्रित होने से पर द्रव्य है, परन्तु दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही मोक्षमार्ग है। क्योंकि वह आत्माश्रित होने से स्वद्रव्य है। इस कारण से हे आत्मार्थीजनों ! आगार अथवा अणगार की वेशभूषा के आग्रह तजकर अपनी आत्मा को दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूपी मोक्षमार्ग में जोड़ों।

फिर 'सिद्धा पनरस भेया' अर्थात् पन्द्रह भेद से सिद्ध। यह श्वेताम्बर आगम कथन जग प्रसिद्ध है। उनमें से एक भी भेद की उत्थापना करने वाले उत्सूत्रभाषी को अनंत संसारी बनना पड़ता है- ऐसी दिव्यध्वनि सुनाने वाले भवभीरु से केवल मनकल्पित स्वलिंग मात्र का ही एकांतिक आग्रह कैसे हो सकता है ?

नाटक करते-करते या नाटक देखते-देखते, शृंगार सजते-सजते या विवाह के फेरे लेते-लेते, खाते-खाते या सफर करते-करते, जीवदया का चिंतन करते-करते या गर्दन पर छुरी चलाते-चलाते इस तरह नाना प्रकार की बाह्य चेष्टाएँ होते हुए भी अंतर्मुहूर्त में

केवलज्ञान प्राप्त होने के अनेक प्रमाणित-दृष्टांत श्वेताम्बर साहित्य में देखे जाते हैं। जहाँ केवलज्ञान प्राप्त हुआ वहाँ साध्य की सिद्धि हुई, फिर साधक दशा कहाँ रही ? कि जिससे साधन बसाने पड़े।

वंदनीय कौन ? केवलज्ञान या ओघा मुहपत्ति आदि साधुस्वांग ? यदि ओघा मुहपत्ति आदि वंदनीय होते तो उनके मेरू समान ढेर व्यर्थ क्यों बतलाए जाते हैं ?

ओघे तो गोरजीओं (यतियों) के पास भी होते हैं। उन्हें क्यों अवंदनीय ठहराते हो ? जैसे उनके पास मुनिदशा नहीं है, वैसे ओघा मुहपत्ति होते हुए भी जिन्हें आत्मज्ञान, कि जिसके द्वारा आत्मा को देह से भिन्न प्रत्यक्ष देखा जाना जा सकता है, वह नहीं हो तो उसे भी मुनिदशा नहीं है; क्योंकि मुनिदशा तो आत्मज्ञान के द्वारा ही हो सकती है। 'अप्प नाणेण मुणी होइ' ऐसा आचारांग सूत्र कहता है, इसलिए वे वंदनीय पूजनीय नहीं हो सकते। वंदनीय-पूजनीय तो ज्ञानादि आत्मगुण हैं, अज्ञानादि नहीं ! शास्त्रज्ञान तो ज्ञानियों के ज्ञान की स्थापना है, उस उधार ली हुई रकम का दूसरा कोई मालिक नहीं बन सकता।

स्वयं को आत्मज्ञान नहीं होते हुए भी जो अपने को सुगुरु मानकर-मनवाकर भक्तों के द्वारा अपनी सविधि वंदना और सोने के फूलों से नवांग पूजा करवाने की रसवृत्ति रखते हैं, तथा आत्मज्ञानियों की आशातना करने-करवाने में अपना महारथ प्रशंसित करते हैं उनकी क्या गति होगी ? यह देखते हुए सखेद आश्चर्य होता है, क्योंकि

ऐसें आचार्य नव-पंचक की पूर्ति हेतु अपनी कमर कस रहे हैं।

जिसको जिस भव में क्षायिक सम्यक्त्व हो उसको उसी भव में अथवा दूसरे या तीसरे भव में और क्वचित् विकल्प से चौथे भव में केवलज्ञान अवश्य ही प्राप्त होता है। उनमें कोई तीर्थंकर नामकर्म युक्त हो और कोई न हो- यह बात सैद्धांतिक है।

क्षायिक सम्यक्त्व के प्राकट्य के कारण जिस प्रकार वर्तमान तीर्थंकर वत् भावी तीर्थंकर आराध्य हैं, उसी प्रकार भावी सामान्य केवली भी वर्तमान जिनवत् आराध्य हैं। वर्तमान दशा की उपेक्षा करके अद्यावधि बाह्य साधुत्व नहीं होते हुए भी भावी जिनेश्वर श्री श्रेणिकादि के जीवद्रव्य की वर्तमान जिनेश्वरवत् आराधना जैसे उपादेय है, और उससे उनकी मूर्तिपूजादि गुण रूप है, वैसे ही वर्तमान क्षायिक द्रष्टा, अखण्ड स्वरूपज्ञानी, उत्कृष्ट अप्रमत्त संयमी और भावी सम्पूर्णज्ञानी युगप्रधान श्रीमद् राजचन्द्रजी की आराधना वर्तमान जिनवत् उपादेय है ही। अत: उनकी मूर्ति और अनुभव वाणी भी वंदनीय, पूजनीय यावत् आराधनीय है ही। फिर भी 'माने उसके देव-गुरु और पालन करे उसका धर्म है।' जो जिसके निमित्त से तैरने वाले हो वे उसके निमित्त से ही तैर सकते हैं। सभी को कोई एक ही निमित्त नहीं ही हो सकता वहाँ फिर भिन्न निमित्तता में विवाद क्या ?

चैतन्य-टेलिविजन पद्धति से देखते हुए तो श्री श्रेणिक के जीवद्रव्य की वर्तमान में नैगमनय से प्रभुता दिखाई देती है, जब कि श्रीमद् राजचन्द्रदेव के जीवद्रव्य की तो वर्तमान में एवंभूतनय से प्रभुता

प्रकट हुई दिखती है, क्योंकि वे महाविदेह क्षेत्र में श्री सीमंधर तीर्थंकर के समवसरण की केवली पर्षदा में विराजित हैं।

पं. सुखलालजी जैसे समर्थ विद्वान तार्किक जैन भूगोल - खगोल की विसंवादिता और जड़ विज्ञान की विलक्षण प्रकटता के कारण अनुमान प्रमाण से भले ही महाविदेह को कवियों की कल्पना मानें, परन्तु चैतन्य विज्ञान के आविष्कार रूप दूरंदेशी लब्धि-दूरबीन द्वारा देखने पर महाविदेह इस दुनिया से एक अलग स्वतंत्र दुनिया है एवं नंदीश्वरादि द्वीप, स्वर्ग-नर्क ये सब प्रचलित प्ररूपणा से भिन्न स्वरूप में हैं अवश्य, ऐसी प्रतीति होती है।

किसी-किसी शास्त्रविद् को ऐसा कहते हुए सुना है कि समकिती तो देवलोक में ही जाते हैं, कदापि समकित की प्राप्ति से पूर्व मनुष्यायु बंधित हुई हो तो भी वे कर्मभूमि में नहीं जा सकते। भोगभूमि में ही जाएँगे- ऐसा शास्त्र कहते हैं। इसलिए हम तो श्रीमद् देवलोक में पधारे हैं ऐसा मानते हैं- प्ररुपित करते हैं।

प्रश्न - आपकी महाविदेह वाली मान्यता का क्या आधार है ?

समाधान - केवल ज्ञान स्वरूप अपनी आत्मा की परद्रव्य और परभावों से भिन्न प्रतीति, क्वचित् मंद - क्वचित् तीव्र, क्वचित् स्मरण - क्वचित् विस्मरण धारा रूप से जब तक प्रवर्तित हो तब तक उस प्रतीति धारा को क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहा जाएगा और एक धारावाही प्रवाह से उस अखण्ड प्रतीति को क्षायिक सम्यक्त्व कहा जाएगा। क्षायोपशमिक समकिती जीव को

स्वरूपानुसंधान पूर्वक परचिंत्वन हो तब तक उसकी वह दशा सम्यक् मानी जाएगी, परन्तु अभ्यासकाल में परचिंत्वन के समय क्वचित् स्वरूपानुसंधान छूट भी जाय वहाँ चैतन्य की अकेली परव्यवसायिता हुई मानी जाएगी, वैसी दशा मिथ्या मानी जाएगी। वैसी हालत में योगानुयोग से यदि आयुबंध हो जाए तो तत्समयी अध्यवसाय के अनुसार चारों गतियों में से किसी भी गति का आयुबंध होता है- यह सहज में समझ में आए ऐसी बात है।

श्रीमद् को स्वात्म प्रतीतिधारा जब क्षायोपशमिक भाव से प्रवर्तित रहती थी, तब एक बार श्री सीमंधर प्रभु के सत्संग प्रसंग को चैतन्य टेलीविजन पद्धति से देखकर उल्लास में आकर 'भवे भवे तुम्ह चलणाणं' इस सूत्रानुसार उनके शरण भाव में इतने तल्लीन बन गए थे कि स्वात्म प्रतीतिधारा छूट गई और मनुष्यायु बंध गई। क्षायिक धारा तो उनको उसके बाद सिद्ध हुई।

निदान रहित यदि मनुष्यायु बंध जाए तो वह समकिती जीव भोगभूमि में जाय यह सम्भव है, परन्तु निदान युक्त मनुष्यायुबंध को उपर्युक्त सिद्धांत लागू नहीं हो सकता। फिर सम्यकूत्व की प्रवर्तित गतिशील धारा में जहाँ निदान की संभावना नहीं है, वहाँ यदि आयुबंध हो तो वह देवायु रूप में हो ऐसा समझा जाता है। इस प्रकार आगम और अनुभव प्रमाण से उस महाविदेही का महाविदेह में गमन सिद्ध हुआ। गंभीरता से सोचने पर उक्त आगम प्रमाण बुद्धि गम्य हो सकता है।

महाविदेह में वे मुहाविदेही, मानवदेह धारण करने के पश्चात् पूर्व संस्कार बल से बाल्यावस्था में द्रव्य-भाव निर्ग्रंथ बनकर प्रभु कृपा से सातिशय अप्रमत्तधारा की साधना को विकसित करने में जुट गए। थोड़े ही वर्षों के पश्चात् उसे पार करके अपूर्व करण से क्षपक श्रेणिक पर आरोहणपूर्वक घाती कर्ममल का सर्वथा क्षय करके एवंभूत नय से अरिहंतपद पर आरुढ़ होकर **श्री सीमंधर प्रभु की केवली पर्षदा में वे परमकृपालु वर्तमान में विराजमान हैं। इस आत्मा को उस परमकृपालु की असीम कृपा का बहुत बार अनुभव होता है। अधिक क्या लिखूँ ? इसीलिए साक्षात् परमात्मा के रूप में यह देहधारी उनकी उपासना कर और करवा रहा है।**

शंका : आपको यदि महाविदेह और श्री सीमंधर तीर्थंकर देव के समवसरण की प्रतीति है, तो तीर्थंकर देवों की शाश्वत क्रम से चल रही आराधना पद्धति को छोड़ कर एक सामान्य केवली की आराधना का प्रचार क्यों करते हैं ? क्या, यह तीर्थंकरों की महान आशातना नहीं है ?

समाधान : जैसे महाविदेह के ईश्वर नामक तीर्थंकर देव के प्रत्युत्तर से प्रेरित होकर दो चारणलब्धिधारी मुनि आकाशगमन द्वारा भारत के तत्कालीन कूर्मापुत्र केवली, जो केवलज्ञानी होते हुए भी माता-पिता के अनुग्रह हेतु घर में रहे थे, उनके समीप आए तब उन्हें देखकर केवली भगवंत ने प्रथम देशना प्रकाशित की। वह सुनते-

सुनते वे दोनों मुनि केवलज्ञान को प्राप्त हुए। इस प्रकार जिसके निमित्त से ज्ञानी की दृष्टि में भव पार उतरना नियत हो उनके ही आश्रय से भव पार उतरना हो सकता है। ऐसा सिद्धांत निश्चित होता है। इस न्याय से तथा भव्यता के कारण इस क्षेत्र से वर्तमान में श्रीमद् के निमित्त से ही बहुत से भव्य समकित पाने वाले हैं, अत: श्री सीमंधर प्रभु की ही तथा प्रकार की कथंचित प्रेरणा पाकर यह देहधारी, उक्त आराधना का प्रचार कर और करवा रहा है तो वह आराधना-प्रचार तीर्थंकरों की आशातना नहीं, परन्तु आज्ञा की आराधना है।

शंका : परम पूज्य प्रभुश्री लघुराजस्वामी तो अपने प्रतिबोधित अनुयायी वर्ग को ऐसी प्रतिज्ञा करा गए हैं कि 'जैसे सती का पति एक' वैसे ही हम सबके गुरु एक परमकृपालु श्रीमद् राजचन्द्रदेव ही, अन्य को गुरु माने नहीं। जब कि आप उन्हें गुरु के बजाय भगवान मनवाते हैं, तो आपको ऐसा तो कौन-सा ज्ञान हुआ है कि जिसके बल पर यह नई प्ररूपणा आप करते हैं ?

समाधान : जिनकी पराभक्ति की प्रशंसा समय-समय पर इन्द्रसभा में भी हो रही है ऐसे उस भक्तावतार महापुरुष ने केवल निखालिस सरल भक्ति बल से हजारों अजैन पाटीदारों को भक्ति के रंग में रंग कर प्रथम अपनी ओर श्रद्धान्वित बनने दिया। थोड़े समय पश्चात् उनमें से कुछ भोले भक्त पूर्व संस्कारवश व्यक्ति-व्यक्ति को गुरु मानने लग गए, जो अनर्थ का कारण था। इस लिए अवसर देखकर उन्होंने एक स्थान पर सबको बाँधने हेतु उपर्युक्त प्रतिज्ञा करवाई,

उस प्रतिज्ञा में देवतत्त्व और गुरुतत्त्व की अभेद विवक्षा है। भेद विवक्षा काल में तो वे श्रीमद् की परमात्मारूप में ही पहचान करवाते और उनकी पहचान करवाने में स्वयं गुरुपद की भूमिका निभाते थे, क्योंकि जो देवतत्त्व और धर्मतत्त्व की पहचान करवाएँ वही गुरुपद कहा जाएगा।

यदि उन्होंने श्रीमद् की आराध्य-रूप में पहचान नहीं कराई होती, तो इतने सारे भक्तों में से अपने आप कौन-कौन श्रीमद् को आराध्य समझकर उनकी आराधना कर सकते थे ? क्योंकि स्वयं को तो तथा प्रकार का किसी को ज्ञान था नहीं ! उसी न्याय से साधकीय जीवन में गुरुपद की अनिवार्यता स्वीकार की गई है। अन्यथा देवपद और गुरुपद की कथंचित भिन्नता का प्रतिपादन ज्ञानियों ने नहीं किया होता।

जिन्होंने श्रीमद् की उपस्थिति में उन्हें (अपने) पूर्व संस्कार-बल से ज्ञानी के रूप में पहचाना, पहचान कर उनके ही बोध के द्वारा बोधि-समाधि-लाभ प्राप्त किया, उनके तो श्रीमद् गुरु भी थे और देव भी थे, परन्तु श्रीमद् के देह-विलय के पश्चात् उनकी पहचान जिन्होंने करवाई, वे तो पहचान प्राप्त करने वालों के गुरु ही माने जाएँगे। श्रीमद् तो उनके आराध्य देव ही माने जाएँगे, परन्तु गुरु नहीं ही यह रहस्य है।

केवल एकांतिक रूप से उभय सापेक्ष तत्त्व को एक निरपेक्ष मानने पर तो वस्तु का अनेकांतिक स्वरूप पहचाना नहीं जाता, और उसके

अभाव से सम्यक्त्व की उपलब्धि नहीं हो सकती। इसलिए वह होता है।

उपर्युक्त तथ्य के अनुसार ही इस देहधारी की प्ररूपण-नीति है। अत: उसमें कोई प्ररूपणा भेद नहीं है, नहीं है तथा फिर भी जिन्हें वह भेद प्रतिभासित होता है, वह तो उन्हीं की बुद्धि का भेद है।

शंका : श्रीमद् स्वयं अपने आपको क्या पच्चीसवें तीर्थंकर मनवाते थे ?

समाधान : नहीं ! परन्तु कुछ निंदक मित्र श्रीमद् का पच्चीसवें तीर्थंकर के नाम से उनका मजाक उड़ाते थे और अब भी उड़ाते हैं। फिर भी उनका मजाक का भाव दूर करके शेष को तलाशें तो वह बात कथंचित् मान्य करने योग्य अवश्य है।

शंका : तीर्थंकर तो चौबीस ही होते हैं पच्चीस किस प्रकार से ?

समाधान : पच्चीसवाँ तीर्थंकर श्री संघ कहा जाता है, यह बात तो सही है न ?

श्री संघ अर्थात् साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका का चतुर्विध समुदाय। यदि सारे समुदाय को पच्चीसवाँ तीर्थंकर मानेंगे तो वह तारेगा किसे ? क्योंकि वह तो स्वयं ही तारकपद ठहरा। वहाँ फिर तार्य-तारक संबंध कहाँ रहा ? उस संबंध के अभाव से तार्यपद और तारकपद ये दोनों भी असिद्ध निश्चित होंगे। इसलिए उसका तात्पर्य अर्थ दूसरा होना चाहिए।

तीर्थंकर के अभावकाल में तारकत्व का उत्तरदायित्व वहन करने

में अपने-अपने समय में श्री संघ में जो अद्वितीय पुरुष विशेष हों वे युगप्रधान सत्पुरुष कहे जाते हैं। वे भी तारने का कार्य करते हैं। इस कारण से अपवाद रूप से तीर्थंकर कहे जा सकते हैं। फलितार्थ यह आया कि श्री संघ पच्चीसवाँ तीर्थंकर नहीं, परन्तु उसमें निहित विराजित युगप्रधान सत्पुरुष ही पच्चीसवाँ तीर्थंकर माने जाते हैं। उसी न्याय से वैदिक परम्परा में पूर्णावतार और अंशावतार की कल्पना की गई है।

श्रीमद् राजचन्द्रजी उस काल, उस समय के युगप्रधान सत्पुरुष थे। उनमें तथाप्रकार की तारकशक्ति थी। इसलिए ही डंके की चोट पर कहा कि-

'तीर्थंकर ने जो समझा और पाया वह इस काल में समझा नहीं जा सके अथवा पाया नहीं जा सके ऐसा कुछ भी नहीं है। यह निर्णय लम्बे अर्से से कर रखा है। यद्यपि तीर्थंकर बनने की इच्छा नहीं है, परन्तु तीर्थंकर ने जो किया उसके अनुसार करने की इच्छा है इतनी अधिक उन्मत्तता आ गई है। उसे शमित करने की शक्ति भी आ गई है, परन्तु जान-बूझकर शमित करने की इच्छा नहीं रखी है।' - पत्रांक 170

जिस प्रकार तीर्थंकर एक विशेषपद है उस प्रकार युगप्रधान भी एक विशेष पद है। केवल आचार्य पद के साथ ही उस पद का कोई सीमित संबंध नहीं है। परन्तु उत्सर्ग से सामान्य केवली से लेकर क्षायिक सम्यक्त्व युक्त द्रव्य-भाव साधुपद पर्यंत और अपवाद से

क्षायिक सम्यक्त्व वत् भाव साधु पद तक उस पद की व्याप्ति है। अपने-अपने समय में जिसकी तारक पुण्यदशा अद्वितीय हो वह युगप्रधान माना जाता है। जैसे कि केवलियों में प्रथम युगप्रधान आर्य सुधर्मास्वामी माने गए और साधुओं में 'दुप्पसहो जा साहु' दुप्पसह साधु अंतिम युगप्रधान बताए जाते हैं वैसे ही अपवाद से श्रीमद् राजचन्द्रजी भी युगप्रधान थे, ऐसा ज्ञानियों की कृपा से जाना है।

ॐ आनन्द आनन्द आनन्द
सहजानंदघन
सादर जयसदुगुरु वंदन सह
सहजात्म स्मरण।

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी प्रकाशित

योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानंदघनजी
लिखित - सम्पादित साहित्य

* उपास्यपदे उपादेयता * पत्र सुधा * सहजानंद सुधा
* सहजानंद विलास * सहजानंदघन पत्रावली
* अनुभूति की आवाज़ * आनन्दघन चौबीसी सार्थ
टीका-सतरह स्तवन * सद्गुरु महिमा * पत्र सरिता।

कलश काव्य

सफल थयुं भव म्हारुं हो कृपालुदेव।
पामी शरण तमारुं हो कृपालुदेव !

कलिकाले आ जम्बु-भरते
देह धर्यो निज पर हित शरते,
टाल्युं मोह अंधारूं हो कृपालुदेव। ...सफल... ॥1॥

धर्म-ढोंग ने दूर हटावी,
आत्मधर्म नी ज्योत जगावी,
कर्युं चेतन जड़ न्यारुं हो कृपालुदेव ! ... सफल... ॥2॥

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-रमणता,
त्रिविध कर्मनी, टाळी ममता,
सहजानंद लह्युं प्यारुं हो कृपालुदेव। ... सफल... ॥3॥

(सफल हुआ भव मेरा हो, कृपालुदेव।
पाकर शरण तुम्हारा हो कृपालुदेव!)

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

जिनभारती का श्रीमद् राजचन्द्र साहित्य :

पुस्तकें : * सप्तभाषी आत्मसिद्धि * पंचभाषी पुष्पमाला * प्रज्ञा संचयन * रेडियो रूपक।

सी.डी. रिकॉर्ड : 1. श्री आत्मसिद्धि शास्त्र-अपूर्व अवसर, 2. श्री भक्ति कर्त्तव्य, 3. परमगुरु पद, 4. राजपद-राजवाणी (वचनामृत), 5. धुन ध्यान-सहजात्म स्वरूप परमगुरु, 6. भक्ति-झरणां + स्वाध्याय (पू. माताजी), 7. परमगुरु प्रवचन-1 पाँच समवाय: श्रीमद्जी सहज समाधि (श्री सहजानंदघनजी), 8. श्रीमद् राजचन्द्रजी की ज्ञानदशा, जीवनी, गांधीजी कथन (श्री सहजानंदघनजी), 9. प्रज्ञावबोध-1 (31,32,33), 10. प्रज्ञावबोध-2 (34,35,36,37), 11. गुरुगाथा : ध्यान संगीत, 12. महावीर दर्शन, 13. महावीर कथा (दोनों श्रीमद् तत्वदर्शन आधारित)।

यो.यु.श्री सहजानंदघनजी प्रस्तुत एवं संबंधित जिनभारती साहित्य :

प्रवचन सी.डी. रिकॉर्ड : * परम गुरु प्रवचन : 1 से 5 * पाँच समवाय : श्रीमद्जी सहज समाधि (गुज.) * आत्मभान-वीतरागता (हिन्दी) * दशलक्षण धर्म (सेट 1 से 10) * नवकार महिमा (हि) * श्री कल्पसूत्र (हि)(सेट 1 से 13) * समाधि मरण की कला (हि) * श्रीमद् राजचन्द्र शताब्दी : श्रीमद्जी की ज्ञानदशा, जीवनी, गांधीजी कथन (हि) * आत्म साक्षात्कार का अनुभवक्रम-1 (हि) * आत्मसाक्षात्कार का अनुभवक्रम-2 (हि) * आगे 3,4,5 एवं अन्य अनेक विषय के सी.डी. प्रायोजकों की प्रतीक्षा में।

पुस्तकें : दक्षिणापथ की साधना यात्रा (गुज + हिन्दी) : अब ऑडियो बुक स्वरूप में * आत्मज्ञा माताजी * चल बसा एक गुरुबंधु * कर्णाटक में भद्रबाहु से भद्रमुनि तक : सहजानंदघन चरित्र कथा * My Mystic Master Y.Y. Shri Sahajanandaghanji * Role of Jainism in Vijaynagar Empire & Jain Contribution to Kannada Literature & Culture * कर्नाटक के साहित्य और संस्कृति को जैन प्रदान * उपास्यपदे उपादेयता।

(सर्व सौजन्य : श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी, कर्नाटक)

जिनभारती, प्रभात कॉम्पलेक्स, के.जी. रोड, बैंगलोर-560 009.
दूरभाष : 080-26667882, 65953440, 09611231580

स्वाध्याय - प्रतिभाव

जन्म शताब्दी के 'अपूर्व अवसर' पर

आपको बुला रहा है
स्वर–देह सद्गुरुदेव सहजानंदघनजी का !

'हे जीव ! प्रमाद छोड़कर जागृत हो, जागृत हो। अन्यथा रत्नचिंतामणिवत् यह मनुष्यदेह निष्फल चला जाएगा।।'

महाविदेहस्थ, महाविदेहीदशा संस्थित परमकृपालुदेव के ऐसे प्रबल वचनामृत-घोष-प्रतिघोष को, उनके अनन्य शरणस्थ सद्गुरुदेव सहजानंदघनजी की झकझोर देनेवाली भवनिद्रा से जगा देनेवाली और भाव-निद्रा तोड़ देने वाली अगम वाणी में क्या आपने सुना है ? सुनकर, सोचकर हृदय में उतारा है ?

'आत्मभान्-वीतरागता', 'पांच समवाय', 'नवकार महिमा', 'दशलक्षण धर्म', 'समाधिमरण की कला' आदि परमगुरु-प्रवचन की सी.डी. कृतियों के उपरांत अभी तो बहुत कुछ महत्त्व की निम्न चिरंतन, दुर्लभ सी.डी.यों के द्वारा सुनना और सुनकर आत्मश्रेणि की सीढ़ियों पर चढ़ना शेष है- यह खजाना अभी तो गुप्त ही पड़ा है:-

* श्रीमद् राजचन्द्र शताब्दी प्रवचन * साकार-निराकार * आध्यात्मिकता * अहिंसादर्शन * आत्मसाक्षात्कार का अनुभवक्रम (संपुट) आदि अनेक।

थोड़े ही बचे उनके इन अद्भुत, अनुभूत, अगमनिगम के गुरुगमपूर्ण विषयों को उनकी ही स्वानुभव-वाणी में सुनना है ? उनके इस दुर्लभ स्वरदेह का जतनयुक्त, परिश्रमसाध्य-महाकष्टसाध्य स्टुडियो रिकॉर्डिंग रूपांतरण-निर्माण करवाकर, इस परमोपकारक युगदर्शी-युगप्रधान परम पुरुष को सुनने-सोचने और संभालने के साथ विश्व भर में अनुगुंजित करने प्रतीक्षा है आपके भावपूर्ण अनुदानों-समर्पणों की। गुरुदेव का बुलावा आ चुका है। शीघ्र निर्णय कर सम्पर्क करें- परमगुरु-वाणी सेवक, **प्रा. प्रतापकुमार टोलिया–** 09611231580 ई-मेल : pratapkumartoliya@gmail.com

अजीतकुमार झाबक– 09894639735 ई-मेल : ajabakh@gmail.com